गांधी-गाथा

जी. रामचंद्रन्



गाँधीजी और स्वर्गीय महादेव देसाई

चित्रकार : श्री कनु गांधी

गाँधी-गाथा

लेखक

श्री जी० रामचंद्रन्

भूमिका-लेखक

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादक

श्री रुद्रनारायण शुक्ल

हिन्द किताब्स लिमिटेड

बम्बई

प्रथम संस्करण, १९४७

मूल्य १)

प्रकाशक :
वी. कुलकर्णी, हिन्द किताब्स लि०,
२६१-२६३ हार्नबी रोड, बम्बई

मुद्रक :
कन्हैयालाल पी. शाह, ओरियंट प्रिंटिंग हाउस,
नईवाड़ी, बंबई २

सौन्द्रम को

जो मेरी पत्नी भी है, साथी भी

प्रस्तावना

कुछ वर्ष पहले मैंने यह गाथाएँ अपनी नोट-बुक में लिख रखी थीं। १९४२ में जब मैं राजनीतिक कैदी था, मैंने अपना समय इन्हें लिखने में बिताया, और इन्हें लिख कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

कुछ देर तो मैं इन्हें प्रकाशित करने में हिचकिचाता रहा। मैंने सोचा कि शायद यह गांधीजी के बहुत व्यक्तिगत चित्र हैं। मगर अज मेरा ख्याल है कि यह चित्र शायद गाँधीजी के असली रूप पर प्रकाश डालें, जो रूप हमें जीवन-गाथाओं से कदापि नहीं मिल सकता।

इनमें से कुछ घटनाएँ मेरे सामने घटीं, कुछ मुझे गाँधीजी के अभिन्न मित्रों ने सुनाईं।

सेवाग्राम, वर्धा
६-९-४५

जी० रामचंद्रन्

सूची

भूमिका

ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं, जिनसे ज्यों-ज्यों आपकी घनिष्टता बढ़ती जाए, उनके लिए आपका आदर भी बढ़ता जाए। शायद यह बात हर महापुरुष के लिए कही जा सकती हो, मगर गांधीजी के लिए तो यह बात बहुत ही उपयुक्त है। आप जितना अधिक गांधीजी के साथ रहेंगे, उतना ही आपका उनके प्रति आदर-सम्मान बढ़ता जाएगा।

इस पुस्तक की गाथाओं के लेखक गांधीजी के उपासक ही नहीं वरन् उनको प्यार करनेवालों में से एक हैं। एक पुरानी कहावत है कि प्यार अंधा होता है मगर ऐसी बात नहीं। प्यार ही एक ऐसी चीज़ है जो सच्चाई को देख सकती है।

गाँधीजी के चारों ओर उनके उपासक रहते हैं। मगर वे सब उपासक ऐसे नहीं जो हास्य-रस के पारखी हों और जो आज की आमोदप्रिय जनता के लिए लिख सकें। जनता को लेखक का आभारी होना चाहिए कि उन्हें ऐसी पुस्तक दी जा रही है जिसमें पहली बार गांधी-जीवन की गाथाएँ दी गई हैं। इधर ऐसी चीज़ों का अभाव खटक रहा था, और यदि सच्ची गाथाएँ न लिखी जातीं तो संभव था कि इस विषय पर दंतकथाएँ गढ़ी जातीं।

मद्रास,
२४ अक्तूबर, १९४५

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य



गांधीजी और दीनबंधु एण्डूयूज   चित्रकार : श्री कनु गांधी

एण्ड्रयूज़

गांधीजी के संबंध में महाकवि की उक्ति 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' पूरी तरह चरितार्थ होती है। कई बातों में स्वर्गीय श्री सी० एफ० एण्ड्रयूज़ बापू से बिलकुल ही भिन्न विचार रखते थे। कठोरता तो उनके पास न फटकी थी। वे इतने साधु थे कि कभी-कभी उनकी उदारता उनकी दानाई से बाज़ी मार ले जाया करती थी।

सन् १९२६ की बात है: श्री एण्ड्रयूज़ गांधीजी के साथ साबरमती सत्याग्रह आश्रम में ठहरे हुए थे। एक दिन इसी अवसर पर, दक्षिण-भारत के किसी स्थान का एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता साबरमती आया। वह एक विपत्तिग्रस्त नवयुवक था। अपने जिले की कांग्रेस कमेटी का वह मंत्री रह चुका था। कार्यकाल में उसके पास काफ़ी धन विभिन्न कार्यों के हेतु भेजा गया था और एक अच्छे मन्त्री की भाँति उसने उदारतापूर्वक उसे खर्च भी कर डाला। गलती केवल थोड़ी-सी हो गई, और वह थी हिसाब किताब न रखने की। मन्त्रीजी ने चिट्ठी-पुर्जा रसीद, बही, इत्यादि किसी चीज के रखने की आवश्यकता न समझी थी।

परिणाम यह हुआ कि उससे कहा गया कि अब वह या तो क़रीब एक हज़ार रुपया कहीं से लाकर जमा करे, अन्यथा हिसाब बताए। वह चक्कर में पड़ गया। हालांकि, यह सत्य था कि उसने सारा धन कांग्रेस के ही कार्यों में ख़र्च किया था। अपने लिए उन रुपयों में से एक पाई भी नहीं ली थी। और ऐसी दशा में वह गांधीजी के पास आश्रय पाने के लिए आया था।

गाँधीजी ने उसकी सारी बातें बड़े धैर्य के साथ सुनीं। बेचारा मंत्री जब अपनी आपबीती सुना रहा था, उस समय श्री एण्ड्रयूज भी वहीं बापू के निकट बैठे थे। गांधीजी ने सौम्यतापूर्वक उसके हृदय की शोध के उद्देश्य से बहुत से प्रश्न घुमा-फिरा कर किये। बातें साफ़ हो गईं और इसमें सन्देह की भी गुंजाइश न रह गई कि उस व्यक्ति ने किसी प्रकार की बेईमानी नहीं की थी। उसका अपराध केवल यही था कि उसने ठीक-ठीक हिसाब नहीं रखा था।

आख़िर गांधीजी ने पूछा—"तुम मुझसे क्या आशा कर रहे हो? मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?" वह चाहता था कि गांधीजी उसकी कमेटी को एक पत्र लिखकर उसका उद्धार करा दें। श्री एण्ड्रयूज बहुत ही सहानुभूतिर्ण प्रतीत हो रहे थे, पर बापू के मुख पर कठोरता की छाया-सी दिखने लगी।

"नहीं, मैं इस प्रकार का कोई पत्र नहीं लिखूँगा," गाँधी-जी ने कहा। "बल्कि, मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि तुम्हारा अपराध क्षमा के योग्य नहीं है। जनता के कोषों की एक-एक पाई एक पवित्र धरोहर हुआ करती है। मेरे लिए इस प्रकार के धन की वह प्रत्येक पाई, जिसका हिसाब नहीं रखा गया है, खयानत के ही समान है।"

"जन-सेवक के लिए ठीक-ठीक हिसाब-किताब रखना, केवल रुपयों और आनों के ही महत्व तक सीमित नहीं हुआ करता, बल्कि वह उसके चरित्र के एक अंग के समान होता है। तुम्हें इस समय भी मेहनत करके हिसाब-चेक इत्यादि प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होना चाहिए; अन्यथा तुम्हारी कमेटी को तुमसे पूरा-पूरा रुपया वसूल कर लेने का पूर्ण अधिकार है। यदि आवश्यक जान पड़े तो तुम्हें अपनी किसी जायदाद या अन्य सम्पत्ति को बेच कर इस प्रकार का ऋण चुकाना ही चाहिए।"

नवयुवक के हृदय को बड़ा ही आघात पहुँचा। वह इससे पहले कभी बापू के सामने नहीं आया था। एक संतोचित सहानुभूति और आपत्ति-परित्राण की आशा लेकर ही वह आया था। उसका जी टूट गया और वह फूट-फूटकर बच्चों की तरह रोने लगा।

एण्ड्रयूज़ बड़े व्यथित हुए और गाँधीजी से तर्क करने लगे कि एक पश्चातापी के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

गाँधीजी बोले, "ठीक है, मैं चाहता हूँ कि वह पश्चाताप करे। वह केवल आत्म-सुधार करके ही सही पश्चाताप कर सकता है। केवल मानसिक पछतावा कोई लाभ न पहुँचा सकेगा। पश्चाताप की कसौटी बुराई को सुधारने में ही है। इस युवक की कमेटी को हिसाब माँगने का पूरा-पूरा अधिकार है। यह एक कांग्रेसी है और शिक्षित भी; और चूंकि इसने कोई पारिश्रमिक न लेते हुए स्वेच्छा और सेवा-भाव से ही कार्य किया; इसलिए इसके उत्तरदायित्व में और भी वृद्धि हो गई

थी । प्रत्येक कांग्रेसी की तरह इसके साथ भी 'कांग्रेस' का उज्ज्वल नाम लिपटा हुआ है । इसे किसी भी तरह से हो, पैसा इकट्ठा करके चुकाना ही पड़ेगा और ऐसा कर चुकने के बाद ही मैं इसकी कुछ सहायता कर सकूंगा ।" किंतु अब एक नई मुसीबत आ खड़ी हुई । उस व्यक्ति के पास घर वापस जाने के लिए रेल का किराया भी नहीं था और इसके लिए उसे कम-से-कम पैंतीस रुपये चाहिए थे ।

एण्ड्रयूज़ का हृदय पिघल उठा और वे बोले—"बापू, इसे किराया तो हम लोगों को दे ही देना चाहिए, ताकि यह शीघ्र ही घर पहुँचकर ऋण चुकाने के लिए पैसा इकट्ठा कर सके ।" "नहीं", गाँधीजी ने स्पष्ट उत्तर दिया, "हम और तुम दोनों ही निर्धन फ़कीर हैं, हम कहाँ से ये पैंतीस रुपये देंगे ? हम केवल जनता की धरोहर से पैसा लेते हैं और ऐसा करना बहुत अनुचित होगा । यदि इसके पास किराया नहीं है तो छोटी-छोटी मंज़िलें बनाकर इसे पैदल घर वापस जाना चाहिए । अभी भी यह अपनी कमेटी का कर्ज़दार है और इसे हमसे भी पैसा लेकर अपने कर्ज़ को बढ़ाना नहीं चाहिए । और कौन जानता है कि यह वास्तव में उचित मार्ग ग्रहण करेगा या नहीं । ऐसी परिस्थिति में इसे किसी से पैसा नहीं माँगना चाहिए ।"

एण्ड्रयूज़ अब खुलकर बिगड़ पड़े और कहने लगे कि "गांधी जी का उसे पैदल जाने के लिए कहना बिलकुल वाहियात बात है ।" किन्तु, गाँधीजी न झुके । वह युवक केवल भोजन और रात भर आराम करने के बाद आश्रम से चल पड़ा ।

गाँधीजी ने उससे अंतिम शब्द जो कहे थे, ये थे—"घर जाओ, सही रास्ते का अनुसरण करो और फिर मुझे लिखो ।

भगवान् तुम्हारा भला करें। मैं तुम्हारा पत्र शीघ्र ही पाने की आशा करता हूँ।"

परन्तु अंतिम दृश्य के समय दीनबन्धु एण्ड्रयूज फिर उपस्थित थे। उन्होंने उस नवयुवक के साथ साबरमती स्टेशन तक एक मील पैदल जाने की इच्छा प्रकट की और गये भी। स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने ३५ रुपये जो वे अपने एक मित्र से उधार लाये थे, उस युवक के हाथों में रख दिये और वापस लौट आये। आश्रम लौटने पर वे सीधे गांधीजी की कुटिया में गये और मुस्कराते हुए बोले—"बापू, मुझे एक बात आपके सामने स्वीकार करनी है।" गाँधीजी ने हँसते हुए बात काटी और बोले, "हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ। तुमने उस व्यक्ति को रुपये अवश्य दिये होंगे। क्या मैं तुम्हें नहीं जानता? तुम कभी सुधर नहीं सकते।"

श्री एण्ड्रयूज़ भी हँस पड़े, ऐसे जैसे स्कूल का विद्यार्थी कोई शरारत करते हुए पकड़ा जाए।

★

गांधीजी और एक अंधी स्त्री

गाँधीजी के चरित्र में कुछ गुण ऐसे भी हैं जिन पर यूरप की पूरी छाप है। हमें यह न भूलना चाहिए कि विद्यार्थी-

जीवन में विलायत में और फिर एक बैरिस्टर और जनसेबक के रूप में दक्षिण अफ्रीका में वे यूरोपियनों के काफ़ी निकट सम्पर्क में आये हैं। पीड़ित जनों के प्रति सहानुभूति भरा हृदय रखते हुए भी बापू कभी भावावेश में नहीं बह जाते।

साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में एक अंधी औरत आई। वह एक तामिलवासिनी प्रौढ़ा थी। उसकी सम्पत्ति केवल एक साड़ी-मात्र थी जो वह पहने हुए थी। दोपहर का समय था जब वह आई और एक बरामदे में बैठ गई। आश्रम में भिखमंगों का प्रवेश निषिद्ध था। उससे जब पूछा गया कि वह आश्रम में किस प्रयोजन से आई है तो उसने उत्तर दिया—"दिखाई नहीं पड़ता कि मैं अंधी हूँ ?"

आश्रम के प्रबंधक श्री मगनलाल गाँधी के पास उसकी शिकायत की गई। उन्होंने आकर उससे यही कहा, "बहिन, हम तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकते, तुम यहाँ से चली जाओ।"

मगन भाई को क्षण भर में मालूम हो गया कि यह तामिल स्त्री बड़ी विकट जीव है।

वह बोली, "चली जाऊँ ! यह महात्मा गाँधी का आश्रम है या कोई पुलिस थाना ? मैं भूखी हूँ, मुझे खाना चाहिए; मेरे रहने को कोई घर नहीं है, मुझे आश्रम में आश्रय मिलना ही चाहिए। तुम कौन हो ? गाँधीजी कहाँ हैं ?"

मगनलाल को इस प्रकार का उत्तर जीवन में पहली बार मिला था। पर वे एक भले आदमी थे। उन्होंने तर्क का सहारा लेते हुए उसे समझाने की चेष्टा की और कहा, "गाँधीजी बहुत व्यस्त हैं, आश्रम में भिखमंगों को कोई स्थान नहीं दिया जाता। यहाँ भोजन पानेवालों को पूरे आठ घंटे मेहनत

करनी पड़ती है और तुम्हारे लिए कोई अंधों की सहायता करनेवाली संस्था ही उपयुक्त स्थान है।" उन्होंने यह भी कहा कि वे उसे नज़दीक ही शहर में एक इस प्रकार के 'नेत्रहीन-गृह' में पहुँचवा देंगे।

उस स्त्री ने मगनलाल को अपनी बात कह लेने दी और तब बोली, "यदि गाँधीजी व्यस्त हैं तो रहें, मैं व्यस्त नहीं हूँ। प्रतीक्षा करूँगी। अंधी होने के कारण मैं काम तो करने से रही पर यहाँ से अभी तो नहीं ही जाऊँगी।"

मगनलालजी को हार माननी पड़ी। बाद में उन्होंने गांधी जी को सारी बातें बताईं।

गांधीजी ने उससे कुछ बातचीत की और फिर कहा, "इसे रात यहां गुजार लेने दो। भोजन कराकर सोने के लिए जगह बता दो। सवेरे विचार किया जायेगा कि इसके लिए क्या प्रबन्ध हो।"

दूसरे दिन सुबह बापू ने उससे कहा, "तुम्हें सूत कातना सिखाया जायगा, अंधे भी बहुत अच्छा सूत कात लेते हैं। मैं तुम्हें सिखाऊंगा। फिर तुम्हें उतना ही मिलेगा जितना कि तुम अपने चर्खे से कमाओगी। और इस शर्त पर यदि तुम यहाँ रहना चाहो तो रह सकती हो।"

उस स्त्री को ये बातें कुछ भली नहीं लगीं और उसके चेहरे पर असंतोष स्पष्ट रूप से दिख रहा था।

उसे कातना सिखाया गया और वह जल्दी सीख भी गई, केवल तीन दिनों में। किन्तु सप्ताह समाप्त होने के पहले ही उसने चर्खे पर काम करना अस्वीकार कर दिया। उसने मन-मानी हरकतें करनी शुरू कर दीं। किसी की आज्ञा न मानना

और आश्रमवासियों को चुन-चुनकर तामिल में गालियां देना उसका नियम हो गया। गांधीजी ने उसे शांत करने की चेष्टा दो-तीन बार की, पर उससे विशेष लाभ नहीं हुआ। उधर उसकी हरकतें दिन पर दिन खराब होती चली गईं। तब, दसवें दिन गांधीजी ने उसे बुलाकर दृढ़ शब्दों में कहा, "मैंने यह तय कर लिया है कि तुम्हें कल सुबह ही आश्रम छोड़कर चला जाना होगा। 'नेत्रहीन गृह' के प्रबंधक के नाम तुम्हें एक पत्र दे दिया जायगा, तुम्हें वहीं जाना पड़ेगा। यदि चाहोगी तो एक आदमी तुम्हें वहां तक शहर में पहुँचा आयेगा।"

क्रोध में भरकर उस औरत ने जवाब दिया, "क्या तुम सच में महात्मा हो? कौन कहता है तुम महात्मा हो? तुम–तुम एक अंधी ग़रीब औरत को इस प्रकार बाहर निकालोगे?"

गाँधीजी दृढ़ रहे। दूसरे दिन सबेरे ही प्रार्थना के बाद गाँधीजी ने उससे जाने के लिए कहा। अंधी ने जाने से साफ़ इनकार कर दिया। आश्रम के एक अन्य तामिल कार्यकर्ता से उसे पहुँचाने के लिए कहा गया। वह उसपर भी बिगड़ पड़ी और किसी को अपने पास तक न आने दिया।

तब गाँधीजी की सौम्य आवाज़ सुनाई दी, "अच्छा, मैं खुद इसे बाहर ले जाऊँगा। इसे समझा दो कि मैं इसका हाथ पकड़कर फाटक तक इसके साथ पैदल चलूँगा।"

जब उसे यह सुनाया गया तो वह ठंडी पड़ गई। गाँधीजी उसके पास पहुँचे और अपने हाथ का सहारा देकर उसे फाटक तक ले गये। वह भी चुपचाप सीधी तरह उनके पीछे-पीछे चली गई।

फाटक पर गाँधीजी ने उससे कोमल स्वर में कहा, "'गृह'

में एक अच्छी नारी की तरह रहना। वे तुम्हारी देख-भाल करेंगे। भगवान् तुम्हारा भला करें।"

और इसके बाद उन्होंने उस तामिल कार्यकर्ता के साथ उसे आगे रवाना कर दिया। अभी ये दोनों कुछ ही दूर गये होंगे कि अंधी स्त्री तामिल कार्यकर्ता की ओर मुड़ी और बोली, गांधीजी का पत्र तुम अपने पास ही रखो। मुझे किसी की मदद की ज़रूरत नहीं।" और यह कहकर वह चली गई।

पीछे पता लगा कि वह बिलकुल अंधी नहीं थी जैसा कि उसने बताया था। और न उसका चरित्र ही अच्छा था।

★

गांधीजी और एक अंधविश्वास

गांधीजी धार्मिक पुरुष होते हुए भी पूरे तर्कशील हैं। यदि आपने उन्हें कभी प्रार्थना आदि के अवसर पर चाव से रामायण या महाभारत की आख्यायिकाएँ सुनते देखा है तो आपको कदाचित् ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि बापू भी थोड़ी-बहुत मात्रा में अंधविश्वासी हैं। किन्तु एक बात एकदम उलटी है। वे कितने प्रौढ़ युक्तिवादी हैं इसके प्रमाण में इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि उन्होंने किसी भी प्रकार के धर्मान्ध--मिथ्याविश्वास को कभी सहन नहीं किया है।

अधिकांश तर्कवादी अंधविश्वास को जड़-मूल से मिटाने की बात किया करते हैं---केवल अपने जी से लिपटे हुए अंध-विश्वासों को छोड़कर। यह सच है कि वे उन अंधविश्वासों का नाश कर पाते हैं जिन पर कि उनकी वक्र दृष्टि पड़ती है, पर वे अन्य कई अंधविश्वासों का, जो उनके अनुकूल होते हैं, निर्माण कर डालते हैं। यह कथन आधुनिक राजनीतिक तर्कवादियों के सम्बन्ध में ठीक चरितार्थ होता है पर गांधीजी उनमें से नहीं हैं।

सन् १९४४ की घटना है। दिल्ली में गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए अनशन कर रहे थे। 'दिलखुश' था उस बंगले का नाम जिसकी अटारी पर के एक कमरे में बापू पड़े हुए थे। उनके कमरे तक जानेवाले जीने की नीचे की सीढ़ी पर श्री एण्ड्रयूज़ डटे बैठे रहते थे, चौकीदारी करते---दृढ़ प्रहरी के समान।

डाक्टरों ने दिन-प्रतिदिन क्षीण होते हुए गांधीजी को पूरा पूरा आराम करने के लिए सख्त ताक़ीद की थी। एक दिन ऐसा भी आ गया था कि उनके प्राण संकट और आशंका के बादलों से कुछ देर के लिए ढंक गये थे।

उनके अनशन का संभवतः तेरहवाँ दिन था जब कि दूर के गांव से एक किसान और उसकी स्त्री 'दिलखुश' में गाँधीजी के दर्शनों की अभिलाषा से आये। फाटक पर एकत्र हज़ारों आदमियों में से दो ही जीव ऐसे थे जो बावजूद तमाम रुकावटों, पहरों और स्वयंसेवकों की कतारों के भीतर तक पहुँच सके। पर अब उनका सामना मुस्कराते हुए दृढ़निश्चयी एण्ड्रयूज़ से था जो सामने सीढ़ी पर अड़े खड़े थे। उन्होंने पूछा, "भाई, आप लोग इस प्रकार धँसते हुए क्यों घुस आये हैं? आप ऊपर जाकर उनकी शान्ति और आराम में व्याघात नहीं पहुँचा सकते। वे

बहुत कमज़ोर हैं और उन्हें आराम करने की सख्त जरूरत है। इसलिए आप उनके जीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना करिए और लौट जाइए।"

किन्तु वह किसान और उसकी स्त्री टलनेवाले प्राणी न थे। वे यात्रा से थके हुए दीख रहे थे। स्त्री के हाथ में एक पीतल का बरतन था जिसका मुँह पत्तों से ढका हुआ था। और उनकी कहानी बड़ी आश्चर्यजनक और रोमांचकारी थी।

दूर एक देहात में उनकी फूस की झोंपड़ी में उनका एक-लौता बेटा बीमार पड़ा हुआ था। वह बहुत ही बीमार था और देहाती वैद्य की सारी कोशिशों के बावजूद भी उसकी हालत बिगड़ती ही चली जा रही थी। ऐसे मौक़े पर उनके इन माँ-बाप को यह विचार सूझा कि एक पात्र में जल ले आकर महात्मा गाँधी के चरण धोये और वह चरणामृत ले जाकर अपने पुत्र को दवा समझकर पिलायें।

आँखों में विश्वास की ज्योति और भावावेश में रुँधी हुई वाणी लिये वे श्री एण्ड्र्यूज़से प्रार्थना कर रहे थे कि एक ही क्षण के लिए उन्हें बापू के पास अपने अभिलषित की पूर्ति के लिए चले जाने दिया जाय। किन्तु 'चौकीदार' ने अपना जी कठोर बना लिया था और डाक्टर की आज्ञा का अक्षरशः पालन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

श्री एण्ड्र्यूज़ ने उनसे कह दिया, "तुम्हारा प्रवेश पाना असम्भव है।" दोनों ओर की टेकें ज़रा मुश्किल थीं। वह ग्रामीण दम्पत्ति आसन जमाकर यह कहकर जीने पर डट गया, कि हम बिना गाँधीजी के दर्शन किये नहीं जायेंगे।

ऐसी दशा में एक सज्जन ने सुझाव पेश किया, "क्यों न

यह मामला बापू के पास ही सुलझाव के लिए भेज दिया जाए और यदि गाँधीजी भी अशक्ति के कारण मिलने से इनकार कर दें तब फिर यह लोग वापस लौटा दिये जाएँ।" वे दोनों भी इस सुझाव पर सहमत हो गये पर उनका कहना था कि गाँधीजी से "हमारे दम तोड़ते हुए इकलौते बेटे की बात अवश्य बता दी जाय।"

"मैं ऐसा ही कहूँगा।" यह कहते हुए श्री एण्ड्रयूज़ ऊपर चले गये। उन्हें इस बात पर पूरा यक़ीन था कि गाँधीजी इस प्रकार के चरणामृत इत्यादि लेने-देने के लिए कदापि तैयार न होंगे। किन्तु हुआ कुछ और ही।

गाँधीजी ने सारी बातें सुनकर अपनी उस समय की अपेक्षाकृत कमज़ोर दशा पर बिल्कुल ध्यान न देते हुए उस दम्पत्ति को ऊपर बुलवा लेने का इशारा किया। श्री एण्ड्रयूज़ के विरोध प्रदर्शित करने पर बापू बोले, "मैं उन्हें उनके अंधविश्वास का इलाज करने के लिए ही ऊपर बुलाना चाहता हूँ।"

वे दोनों ऊपर बुलाये गये तथा आकर गाँधीजी के पलंग के नज़दीक ही बैठ गये। तब गाँधीजी ने अपनी धीमी और कमज़ोर मगर साफ़ आवाज़ में उनसे कहा कि क्या वे भगवान में विश्वास करते हैं? यदि हाँ, तो फिर वे एक साधारण मनुष्य पर अधिक विश्वास और श्रद्धा प्रकट कर अपने उस प्रभु का अपमान क्यों कर रहे हैं? और क्या वे यह नहीं जानते कि इन पैरों के धुले हुए पानी को औषधि के रूप में प्रयोग करके वे स्वयं अपने आपको तथा उन्हें नीचे गिरा रहे हैं? स्वास्थ्य और आरोग्यता की दृष्टि से भी यह कार्य अनुचित है।

इस प्रकार क़रीब १५ मिनट तक बापू उनसे बातें करते

रहे। वे दोनों बहुत ही शर्मिन्दा हुए। बापू ने अंत में उन्हें यह सलाह दी कि भगवान में भरोसा रखो और अपने पुत्र के इलाज के लिए एक डाक्टर का प्रबन्ध करो। पति-पत्नी मुस्कराते हुए खुशी खुशी लौट गये। उन्हें बहुत कुछ मिल गया था। एक ऐसा सबक़ मिला था जिसे वे भूल नहीं सकते थे। कदाचित् वे अब धर्म और औषधि-शास्त्र को एक-दूसरे में मिलाने की चेष्टा पुनः न करेंगे और न अंधविश्वासों के पीछे पड़कर भगवान् का अपमान ही करेंगे।

श्री एण्ड्रयूज़ ने उनकी पीठ थपथपाई और वे बाहर निकले जहाँ हज़ारों आदमी उनका फ़ैसला सुनने के लिए उत्सुक खड़े थे। दम्पत्ति ने बापू के अंतिम शब्द दोहरा दिये। और कौन जानता है कि तर्क का इस प्रकार से बोया गया बीज, श्रुति बनकर कितने मनुष्यों पर प्रभाव डालेगा ?

★

गाँधीजी और झूठ

गाँधीजी झूठ को कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। विद्वानों के बीच यह एक कहावत सी प्रचलित है कि वे एक मक्कार की बातें बर्दाश्त कर लेंगे, पर मूर्ख की नहीं। गाँधीजी शायद कभी मूर्खता की बात सुनकर सहन कर जाएँ पर असत्य

उनके लिए असहनीय है। सत्याग्रह-आश्रम में बच्चों तक से सत्य-असत्य संबंधी उनके कड़े नियमों का पालन सख्ती से कराया जाता था।

यह छोटी सी घटना सन् १९२६ की है। एक ताज़े-ताज़े ग्रेजुएट युवक आश्रम में रहने के लिए आये थे।

गाँधीजी ने उनके लिए तीन महीने 'भंगी' का काम करने का कार्यक्रम निश्चित किया।

वह नवयुवक बच्चों को बहुत चाहता था और इसलिए शीघ्र ही उनमें बहुत चाहा जाने लगा। एक दिन वह एक छोटी आठ वर्ष की आश्रम-बालिका से कुछ खेल-तमाशा करने लगा। हाथ में एक निम्बू लेकर वह उस बच्ची को खिझा रहा था और वह उसे पा लेना चाहती थी। वह बेचारी बच्ची उसे पाने के लिए बड़े नाच कर रही थी। उछलती-कूदती पर असफल रह जाने पर हँसकर चीखती थी; किन्तु जब वह थक गई, आख़िर हारकर रोने लगी। उस युवक को वह निम्बू आश्रम के एक मरीज़ को देना था। अब वह चक्कर में पड़ा; उसने तुरन्त तनिक नाटकीय ढंग से हाथ घुमाया और कह उठा, "मैंने निम्बू नदी में फेंक दिया।" और धीरे से उसे जेब में रख लिया। बच्ची पूछ बैठी—"अब नदी में उस निम्बू का क्या होगा ?" उसका जी उथले पानी में दौड़कर जाने और उसे ढूँढ़ने को हो रहा था।

किन्तु वह युवक बोला—"नहीं वह डूब गया।" अब उन दोनों में फिर से दोस्ती हो गयी और वे मरीज की झोंपड़ी तक पहुँच गये। रास्ते में ज्योंही उस युवक ने जेब से रूमाल निकाला वह निम्बू भी बाहर निकलकर लुढ़क पड़ा। उसके

गिरने पर वह बच्ची उसे उठाने के लिए झपटी नहीं, किन्तु खड़ी होकर क्रोध भरे नेत्रों से उस युवक की ओर देखने लगी वह बोली—"तो तुम मुझ से झूठ बोले थे। जेब में निम्बू को छुपाकर मुझसे कहा कि डूब गया, अच्छा मैं बापू से कहूँगी कि तुम झूठे हो।"

इतना कहकर वह चल दी और सीधे गाँधीजी के पास जाकर उसने सारी कहानी सुना दी। बापूने उसे वचन दिया कि वे इस मामले की जाँच-पड़ताल जरूर करेंगे।

संध्या की प्रार्थना के बाद गाँधीजी ने उस युवक को बात करने के लिए बुलाया। उसने पूरी घटना इस सावधानी के साथ सुना दी कि जिससे यह बात स्पष्ट हो जाये कि जो कुछ भी हुआ वह केवल शुद्ध विनोद-मात्र में ही।

गाँधीजी ने भी उस मजाक का आनन्द लिया पर बोले, "तुम्हें इस बारे में सजग रहना चाहिए, बच्चों के बीच में कभी मजाक में भी झूठ का व्यवहार न करना चाहिए। हँसी-मज़ाक में शुरू हुई बात आगे चलकर आदत भी बन जा सकती है और एक बार वे झूठ को सहज में ही टालने लगें तो भविष्य में उसका परिणाम गंभीर हो सकता है।"

किन्तु बात यहीं तक खतम नहीं हुई। अधिकांश आधुनिक ग्रेजुएटों की भांति वह युवक भी तार्किक स्वभाव का था। उसने आश्रम के कई सदस्यों के साथ 'झूठ' पर विवेचना और बहस की। आश्रमशाला के शिक्षकों में इस संबंध में एक मतभेद-सा हो गया था। किसी ने यह भी कहा कि यदि मज़ाक में भी असत्य अनुचित था तो फिर बच्चों को परियों की कहानियाँ और रामायण, महाभारत की आख्यायिकाएँ भी सुनाना ठीक नहीं

काका कालेलकर को जब इस विवाद की भनक पड़ी तो उन्होंने अपने अनोखे ढंग से इस पर प्रकाश डालते हुए कहा—

"दैनिक जीवन के व्यवहार में 'झूठ' को पौराणिक गाथाओं और अख्यायिकाओं में मत मिलाओ। यदि विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट बातें कम करें और सोचें अधिक तो वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँच जाएँगे कि बच्चों से मज़ाक इत्यादि में भी असत्य बातें न कहना चाहिए और न झूठ का प्रयोग ही करना चाहिए।"

★

गाँधीजी और एक कॉफी प्रेमी

गाँधीजी बीमारों के बड़े अच्छे तीमारदार हैं। साबरमती आश्रम में प्रत्येक मरीज़ के बारे में वे स्वयं ख़्याल रखा करते थे और एक भी बीमार ऐसा न रहता जो उनकी आँखों से न गुज़रा हो। डाक्टरों से सलाह अवश्य ली जाती, किन्तु सारा प्रबन्ध बापू ख़ुद करवाते। आश्रम में यह मज़ाक हुआ करता था कि यदि तुम्हें गाँधीजी से प्रतिदिन मिलना, बोलना और उनके विनोद का आनन्द लेना हो तो बस बीमार पड़ जाओ। क्योंकि गाँधीजी बीमारों के पास रोज़ जाते थे और प्रत्येक के पास कुछ मिनट रुककर हाल-चाल पूछते और एकाध चुटकुला-मज़ाक छोड़ते। कार्याधिक्य और व्यस्तता कभी भी बापू के इस कार्य-

क्रम में बाधक न हो पाती थी।

एक बार एक लड़के को पेचिश की शिकायत हो गई। उसने पूरी कोशिश की कि पथ्य-संबंधी आश्रम के कठिन नियमों का पूरा पालन करे। पर वह सफल न हो सका। कॉफ़ी का वह अनन्य भक्त था। पर आश्रम में कॉफ़ी के दर्शन दुर्लभ थे। धीरे-धीरे उसकी पेचिश ठीक हो गई और कमज़ोरी भर शेष रही। गाँधीजी रोज़ ही नियमानुसार उसके पास आया करते और वे कुछ क्षण उस बालक के लिए बड़े जीवनदायक सिद्ध होते। कमज़ोरी की हालत में एक प्याली काफ़ी के लिए वह तरसता था। एक दिन वह पड़ा हुआ कॉफ़ी के स्वप्न देख रहा था कि इतने में ही गाँधीजी की चंदन की खड़ाऊँ की आवाज़ सुन पड़ी। एक ही क्षण में वे मुस्कराते हुए उसके पास आ पहुँचे। बच्चे की ओर देखकर वे बोले—"अब तो तुम निश्चित ही अच्छे हो चले हो और भूख भी लगती होगी—क्या खाना चाहोगे? मैं जानता हूँ! कुछ अच्छा 'उप्पुम्मा' या ठोसाई।"

यह कहकर बापू हँसने लगे और लड़के को एक सूझ आई। वह बोल उठा—"क्या मुझे एक प्याला कॉफ़ी मिल सकती है?"

बापू हँस पड़े और कहने लगे—"शैतान नहीं तो! कॉफ़ी चाहिए तुझे; अच्छा, तुम्हें ज़रूर मिलेगी। हल्की कॉफ़ी तुम्हारे पेट के लिए हितकर सिद्ध होगी। पर यह तो बताओ, कॉफ़ी के साथ खाओगे क्या? उप्पुम्मा या दोसा तो शायद ही यहाँ बन सके, पर गरम-गरम टोस्ट भी तो बड़े स्वादिष्ट लगेंगे। मैं अभी एक ट्रे भेजता हूँ।"

इतना कहकर बापू चले गये। बालक प्रतीक्षा करने लगा, उसे कुछ संदेह हो रहा था अपने सौभाग्य के बारे में! साबर-

मती आश्रम में कॉफ़ी ! गांधीजी स्वयं भेजने के लिए कहें । ये बातें उसे कुछ अनहोनी-सी प्रतीत हो रही थीं ।

गांधीजी की कुटिया आश्रम के एक छोर पर थी, सड़क से काफ़ी दूर । बालक कल्पना के नेत्रों से देख रहा था कि क्या हो रहा होगा । बापू कस्तूरबा की कुटिया में जाएँगे और उनसे कॉफ़ी तथा टोस्ट माँगेंगे । किन्तु वक़्त ज़रा बेतुका था । रसोई-घर बंद हो चुका होगा, 'बा' भी अब आराम कर रही होंगी, क्या उसने गांधीजी को बहुत अड़चन में डाल दिया था ! कोई बीस मिनट बीते कि आवाज़ आई । वह थी गाँधीजी की खड़ाऊँ की खट-खट ! बापू लौटे क्यों आ रहे थे ? क्या बात थी ? बालक का जी सकपकाने लगा । परन्तु इतने में ही बापू ने प्रवेश किया, सफ़ेद खादी के तौलिये से ढकी हुई ट्रे अपने हाथों में लिये । बालक की आँखें चौंधिया गईं ! यह क्या हो गया !! गाँधीजी कह रहे थे, "ये रही तुम्हारी कॉफ़ी और टोस्ट । कॉफ़ी मैंने खुद बनाई है, ज़रा पीकर बताओ मैं अच्छी कॉफ़ी बना लेता हूँ या नहीं ?" पर वह बालक बोला, "आपने किसी और के हाथ क्यों न यह सब भिजवा दिया । आपको जो कष्ट हुआ उससे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है ।"

"बस बस बहुत हुआ", बापू ने कहा । "अब अपनी कॉफ़ी खराब मत करो । ठंडी कॉफ़ी बुरी होती है । बात यह हुई कि 'बा' सो रही थीं और मैंने उन्हें जगाना ठीक न समझा । खैर, अब मैं जाऊँगा, ट्रे कोई और आकर उठा ले जायेगा ।" इतना कह बापू चले गये ।

कॉफ़ी हलकी बनी थी, पर अत्यन्त स्वादिष्ट थी, लड़के ने उसे अमृत की भांति पी लिया । किन्तु उसे दुःख हो रहा था ।

उसके दिमाग़ की नज़रें देख रही थीं। गाँधीजी ने रसोईघर खोला, स्टोव जलाया और फिर कॉफ़ी और टोस्ट तैयार किये। इतना ही नहीं सारी चीज़ खुद ही ढोकर लाये भी। ताकि बे-मौक़े किसी को तकलीफ न हो। उसका जो बहुत भर आया।

आश्रम में कस्तूरबा की कुटी में थोड़ी चाय और कॉफ़ी मेहमानों के लिए रखी रहती थी। चाय विशेषकर दीनबन्धु एण्ड्रयूज़ के लिए, और कॉफ़ी मद्रास से आनेवाले श्री राज-गोपालाचार्य के लिए।

*

गाँधीजी और कस्तूरबा

गाँधीजी अपने दृढ़-निश्चयी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। उनसे जो भी अधिक सामीप्य-लाभ करता जाता है, उतना ही उस पर अनुशासन का बंधन दृढ़ होता जाता है। मत-विरोध को प्रोत्साहन देते हैं; परन्तु लोग इसके बावजूद भी उनसे विरोध करने से दूर रहते हैं, क्योंकि उन्हें अपने-आपपर जितना विश्वास है, उससे कहीं अधिक बापू पर है। किन्तु सत्याग्रह-आश्रम में एक ऐसा प्राणी भी था जो इस नियम का अपवाद था। वे थीं 'बा', उनसे जो अभिन्न थीं ऐसी 'बा'। 'गाँधी-कुटिया' में जो 'बा' का हिस्सा था और जिसमें रसोईघर भी शामिल था, उस



गाँधीजी और बा

पर उन्हीं का दृढ़ शासन रहता था। पर, बेचारी छोटी-सी बूढ़ी 'बा' के कंधों पर वह सब ज़िम्मेदारी बहुत थी। उन्हें, स्वयं अपने हाथों बनाना और खिलाना पड़ता था। अपने महान् पति को, बच्चों, पोतों, और क़रीब बीस अन्य आश्रम-वासियों को।

वैसे, आश्रम में रहनेवालों की संख्या लगभग दो सौ थी और उनके खाने-पीने का प्रबंध भिन्न-भिन्न कई पाकशालाओं में होता था। पर इस बटवारे के अनुसार ही बा की पाकशाला के जिम्मे बीस आश्रमवासियों को भोजन कराना था। वे अपनी पाकशाला में केवल ऊपरी निगरानी-मात्र ही नहीं किया करती थीं, बल्कि ख़ुद ही प्रमुख भोजन बनानेवाली भी थीं। हालांकि उनके सहायक भी थे, पर अधिकांश भार उन्हें ही उठाना पड़ता। उन दिनों वे बहुत परिश्रम करती थीं और कार्य-क्षमता भी उनकी अद्भुत थी। हां, यह बात अवश्य थी कि उनके नीचे काम करना मज़ाक नहीं था। वे अपने सह-कारियों से बहुत डटकर काम लेती थीं और स्वयं भी समय की पूरी पाबंदी के साथ अथक काम करती थीं। साथ काम करनेवालों से भी वे ऐसी ही अपेक्षा रखतीं और आलस या लापरवाही करनेवाले का गुज़ारा उनके साथ कभी न हो पाता था।

एक बार त्रावणकोर का एक लड़का 'बा' की सहायतार्थ रसोई में नियुक्त किया गया। उसे काम ज़रा कठिन मालूम पड़ा फिर भी उसने तरक्की कर ली और 'बा' को भी उससे पूरा संतोष हो गया। बापू पाकशाला के कामों में दख़ल न देते हुए भी निगाह पूरी रखते थे। उस बालक को उन्होंने भी

बधाई दी। गाँधीजी अपनी पाकशाला की 'राजनीति' से भी उतने ही परिचित थे जितने कि देश की राजनीति से !

लेकिन एक मामला ऐसा था जिस पर कभी-कभी बापू और 'बा' के बीच विरोध उत्पन्न हो जाया करता। ऐसे अवसरों पर बापू थोड़े-बहुत शिथिल से पड़ जाते; क्योंकि न्याय 'बा' के पक्ष में होता। आश्रम में जो उन दिनों देश की राजनीतिक राजधानी बना हुआ था, प्रायः बहुत से अप्रत्याशित अतिथि आ पहुँचा करते थे। ये अतिथि भी भिन्न-भिन्न पाकशालाओं में बांट दिये जाते, पर 'बा' के हिस्से में सदा ही दूसरों से अधिक मेहमान पड़ते। ऐसे मौक़ों पर जब बिना किसी पूर्व सूचना के बहुत से मेहमानों का भार उन पर आ जाता, तभी किसी समय वे बिगड़ उठतीं, सो भी सबके सामने नहीं, एकान्त में। गाँधीजी ऐसे मौकों पर बड़ा दैन्य ग्रहण कर लेते और चतुराई से काम निकालते थे और उस अवसर पर 'बा' से थोड़ा-बहुत डरते भी।

एक दिन ऐसी ही एक घटना हुई। दोपहर को 'बा' और उनके सहकर्मी भोजन इत्यादि समाप्त कर निपट चुके थे, रसोईघर बंद भी किया जा चुका था। 'बा' जैसा कि स्वाभाविक था, थक चुकी थीं। शायद कुछ तबीयत भी भारी थी। वे अपने कमरे में जाकर पड़ रहीं। गाँधीजी रसोईघर में पहुँचे और उस लड़के को इशारे से बुलाया, क्योंकि वह भी जाने ही वाला था। उससे वे धीरे से कान में बोले कि बगलवाले कमरे में ही 'बा' लेटी हैं, उनकी शान्ति में किसी तरह का व्याघात न पहुँचे और यह भी कहा कि "एक घंटे के भीतर ही बहुत से मेहमान आनेवाले हैं। साधारण मेहमान-मात्र नहीं—जिनमें पं. मोती-

लाल नेहरू भी थे। उनके लिए मध्याह्न-भोजन का प्रबंध होना था। उस लड़के ने बा के कमरे की ओर ज्योंही देखा, बापू ओठों पर अँगुली रखते हुए बोले—"उन्हें कष्ट न पहुँचाओ, कुसुम को बुला लाओ, आग जलाओ तथा साग-भाजी काटकर चपातियां बनाने के लिए आटा गूँधो। बा को तभी बुलाना जब उनकी जरूरत हो। और देखो, उन्हें खिझाना मत। यदि बा मुझ पर खफ़ा न हुईं को तुम्हें इनाम मिलेगा!"

उस लड़के की शकल किसी भोले षड्यंत्रकारी के समान हो रही थी। वह थोड़ा घबरा भी रहा था कि कहीं ऐसा न हो, बा जाग पड़ें और उसे उनकी डाँट सुननी पड़े।

कुसुम और उस बालक ने धीरे से चुपचाप रसोई-घर का दरवाज़ा खोला। आग जलाई गई और साग-सब्जी इत्यादि काटने के बाद आटा भी गूँधा जा चुका था; और तब दुर्भाग्य-वश एक तश्तरी झनझनाती हुई ज़मीन पर गिर पड़ी। आवाज़ ने बा को जगा दिया। वे समझीं कि आश्रम की बिल्ली शायद रसोईघर में घुसी है और ऐसा सोचकर वे पाकशाला के भीतर दौड़ीं। उन्हें जो दृश्य दिखा उसे देख वे भौंचक्की-सी रह गईं और पूछने लगीं, "यह सब क्या हो रहा है?" ज़रा तीखी आवाज में उन्होंने प्रश्न किया था; कुसुम और उस लड़के ने सब हाल बता दिया। "किन्तु तुमने मुझे क्यों न बुलाया।" बा ने पूछा "क्या यह समझते हो कि मैं इस अतिरिक्त कार्य का प्रबन्ध करने में असमर्थ हूँ?"

"नहीं बा" बालक ने पुनः सफ़ाई देते हुए कहा—"जब सब तैयार हो जाता तब हम तुम्हें बुलाते।"

बा की अंग्रेजी ज़रा गड़बड़ ही थी और उसी प्रकार उस

बालक का गुजराती ज्ञान भी सीमित था।

मुस्कराते हुए वे अपनी निराली अंग्रेजी में बोलीं—'You also tired much. Why you think you can work more and I can do no extra work' ('तुम भी तो काफ़ी थक गये हो। ऐसा क्यों सोचते हो कि तुम बहुत अधिक काम कर सकते हो और मैं थोड़ा सा ज्यादा काम भी नहीं कर सकती।')

इसके पश्चात् सारी बातें यथाविधि निपटती गईं। बा जानती थीं कि यह सब प्रबन्ध गाँधीजी ने ही कराया था। रात को जब सब अतिथि जा चुके और प्रार्थना समाप्त हो गई तो बा एकाएक बापू के पास पहुँची। उनकी आँखों में विनोद चमक रहा था और वे गाँधीजी के सामने खड़ी थीं।

"आपने उनसे मेरे बिना अकेले काम करने के लिए क्यों कहा था? क्या आप मुझे बिलकुल आलसी समझते हैं?"

बापू ने भी उसी परिहास भरे स्वर में उत्तर दिया, "यह तुम नहीं जानतीं; बा, ऐसे मौकों पर मुझे तुमसे डर लगने लगता है।"

बा हँसने लगीं और वह स्वर्गीय हास कदाचित् यह कह रहा था—"आप! और मुझसे डरते हैं!" और सत्य भी यही था। गाँधीजी को शायद किसी का भय नहीं है। परन्तु, यदि कभी रहा भी होगा तो वह एक छोटी-सी अजेय नारी का—जो उनकी ही स्त्री थीं!

★

गाँधीजी और समय की पाबंदी

एक बार चिदम्बरम् में ऐसा हुआ कि गांधीजी को अपने निश्चित् कार्यक्रम को ठीक समय पर पूरा करने के लिए एक भारी भीड़ को धोखा देकर अपने लिए मार्ग बनाना पड़ा। एक प्रकार से भीड़ और लोगों के हुजूम, गाँधीजी के जीवन में उन्हें कष्टकर ही सिद्ध हुए हैं। उनके मारे बापू को बहुत कम चैन और शाँति मिल सकी है। गांधीजी को देखा नहीं, कि जाने किस व्यथापूर्ण गति और आकर्षण के नियम से बँधे ये उनके पीछे भाग चलते हैं। ऐसे उत्साही, लेकिन पागल हुजूम से गाँधीजी बाल-बाल बचे हैं जो उनके दर्शन के उत्साह और उनका सम्मान करने की लालसा से उन्हें पैरों तले दबा ही डालता।

सब मिलाकर चिदम्बरम् का दिन बुरा रहा। गाँधीजी मोटर में अन्नामलाई विश्वविद्यालय की यूनियन में भाषण देने जा रहे थे। उनके साथ में डाक्टर टी० एस० एस० राजन् बैठे थे। विश्वविद्यालय से कोई आधा मील इस तरफ शहर की एक सँकरी गली में एक घनी भीड़ गाँधीजी का इंतजार कर रही थी। गाँधीजी की कार के एक दम पीछे उनके दल की दो और कारें थीं; भीड़ ने गाँधीजी की कार रोक ली। गाँधीजी ने पूछा कि क्या बात है? भीड़ का प्रतिनिधि सारी बातें समझाने गाँधीजी तक आया। उसने और उसके दोस्तों ने एक भोज का इंत-ज़ाम किया था जिसमें उच्चवर्ण ब्राह्मण और हरिजन साथ-साथ बैठने वाले थे। गाँधीजी के चिदम्बरम् दौरे के उपलक्ष में आयो-

जित यह भोज निकट ही एक विशेष पंडाल में हो रहा था। उन्होंने गाँधीजी से एक मिनट उतरकर भोज देख लेने की प्रार्थना की। गांधीजी ने डा० राजन की तरफ मुड़कर पूछा कि उन्हें यूनिवर्सिटी कब पहुँचना है ? डा० राजन ने बताया कि सिर्फ दस मिनट बाकी हैं। पूछने पर गाँधीजी को यह भी मालूम हुआ कि उस दिन के प्रोग्राम में इस भोज के लिए कोई समय नहीं दिया गया था।

गाँधीजी ने डाक्टर राजन से कहा कि वे इस उपस्थित जनसमूह को समझा दें कि उन्हें दस मिनट के भीतर ही एक अन्य आयोजन में सम्मिलित होना है और उनके कार्य-क्रम में बाधा डालना अनुचित है। किन्तु भीड़ आखिर भीड़ ही ठहरी; लोग हठ करने लगे कि गाँधीजी को मोटर से उतरना ही होगा भले ही वह एक मिनट के ही लिए क्यों न उतरें। लोग डा० राजन से गर्मागरम बहस करने लगे। इसी बीच गाँधीजी ने धीरे से कार के दूसरे दरवाजे को खोला और विश्वविद्यालय की ओर चल दिये। एक क्षण के लिए लोग समझ ही न सके कि क्या हो रहा है। वे तो डा० राजन को ही दोषी समझ उनसे निपटने में जुटे थे। गाँधीजी को मौका मिल गया। वे शीघ्र ही भीड़ को चीरकर बाहर हो गये और पीछे की मोटरों में से एक ने तेजी से आगे आकर उन्हें बैठाया और ले उड़ी विश्वविद्यालय की ओर। भीड़ ने देखा कि चिड़िया उड़ गई और एक बार फिर वही परिचित नारा "महात्मा गाँधी की जय" गूँज उठा। गाँधीजी की कार आगे निकल चुकी थी, उसमें से उन्होंने पीछे फिरकर देखा और एक बालक के समान हाथ उठा हिलाने लगे। जैसे कोई स्कूल का विद्यार्थी किसी झमेले से छुटकारा पाने



गाँधीजी और उनकी घड़ी

पर खुश होता है वैसे ही बापू हँस रहे थे।

आखिरी चीज़ जो उन्हें दिखाई पड़ रही थी, वह थी डा० राजन की दुर्दशा। उनके साथ भीड़ जो बर्ताव कर रही थी वह कम से कम 'अहिंसा' की दृष्टि से देखने पर तो अनौचित्य-पूर्ण ही था। बेचारे डाक्टर को छुटकारा पाने के लिए अपने घूँसों का बड़ा तेज़ी से प्रयोग करना पड़ रहा था। गाँधीजी को इतना समय न था कि वे हिंसा और अहिंसा का निपटारा करने बैठते। उनकी मोटर धूल का गुबार अपने पीछे छोड़ती उड़ी चली जा रही थी। वे विश्वविद्यालय यूनियन में केवल एक मिनट देर से पहुँचे और पहले शब्द जो उनके मुख से निकले वे थे देर से पहुँचने के लिए क्षमा-याचना के।

घड़ी गाँधीजी से कभी अलग न होनेवाली संगिनी है और समय की पाबंदी उनकी नज़र में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण गुण है।

★

गाँधीजी और ज़मींदार

तरह तरह के लोगों के मेहमान बनने के अवसर गाँधीजी को अकसर आया करते हैं। यह "अर्ध नग्न फ़क़ीर" प्रायः राजाओं, ज़मींदारों और लक्ष्मीपतियों का मेहमान रहा है! दिल्ली

की हरिजन-बस्तियों में भी गाँधीजी ने मेहमानी की है। पर इस प्रकार के अवसर कम ही आते हैं जब उन्हें साधारण श्रेणी के काम करने वालों और ग़रीबों के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होता हो। वे जहाँ भी जाते हैं अपने मधुर परिहास द्वारा उस दूरी को प्रतीत नहीं होने देते जो उनके और जन-साधारण के बीच में हैं।

एक बार बंगाल के दौरे के समय गांधीजी एक बड़े ज़मींदार के अतिथि हुए। एक शानदार महल था जिसमें अपने स्वामी की आज्ञा पालन करते हुए नौकर-चाकर यहाँ-वहाँ दौड़ रहे थे।

संध्या-समय छत पर प्रार्थना हुई। यह प्रार्थनाएँ दरबार की तरह हुआ करती हैं जिनमें बड़ी तादाद में जनता इकट्ठी होती है। लोग अधिकतर गाँधीजी के दर्शनों के लिए ही आते हैं और इन प्रार्थनाओं के बहाने उन्हें एक मौका मिल जाता है, उस महात्मा के दिव्य व्यक्तित्व की झाँकी से जी भर लेने का।

तो इस संध्या को स्त्रियों, पुरुषों और बालकों का काफ़ी बड़ा जमाव था। पर तिल धरने की भी जगह न थी। जब सब लोग बैठ चुके थे तब गाँधीजी अपने मेज़बान के साथ छत पर आये और वे दोनों दीवार के किनारे बैठ गये।

गाँधीजी का यह नियम है कि वे प्रार्थना के समय बत्तियाँ बुझवा देते हैं। इसलिए उन्होंने बहुत धीरे से कहा, "कृपया रोशनी गुल कर दीजिये।"

भाग्यवश बिजली का स्विच ज़मींदार साहब के सर के ऊपर उसी जगह था जहाँ वे अपना भारी-भरकम शरीर क़ालीन पर जमाये बैठे थे।

तो क्या उन्होंने गाँधीजी की आज्ञा पालन करने के लिए अपने चोले को कष्ट दिया ? जी, नहीं ! सदा की तरह इस काम के लिए भी उन्होंने एक नौकर को आवाज़ दी। तब एक अजब घटना घटी—गाँधी जी हल्के से, उचककर खड़े हो गये और इसके पूर्व कि ज़मींदार साहब समझें कि क्या हो रहा है, उन्होंने बत्ती का स्विच बंद कर दिया और फिर उसी प्रकार बैठ गये।

प्रार्थना होने का आदेश गांधीजी ने दिया। इस छोटी-सी घटना को काफी लोगों ने देखा और समझा। प्रार्थना समाप्त हो गई और तब, जैसा कि प्रायः ऐसे मौक़ों पर हुआ करता है, लोगों ने विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की झड़ी लगाना शुरू कर दिया। किसी ने कताई से सम्बन्धित एक प्रश्न किया। उत्तर में गांधीजी ने पढ़े-लिखे और धनवान लोगों की शारीरिक श्रम की ओर उदासीनता का ज़िक्र किया और गीता के उस वाक्य का उल्लेख किया जिसमें कहा है कि "जो बिना श्रम द्वारा उपार्जित अन्न ग्रहण करता है, वह चोर है।" और भी सवाल और जवाब हुए। फिर एक अचम्भे की बात हुई !

भीड़ जैसे छँटती जा रही थी, किसी ने एक छोटी-सी मेज उलट दी। परिणाम-स्वरूप उसके ऊपर रखा हुआ चीनी मिट्टी का फूलदान नीचे गिरकर फूट गया।

ज़मींदार ने खिलाड़ियों के समान उत्साह और फुर्ती के साथ कूदकर टूटे-फूटे टुकड़ों को साफ़ करना शुरू कर दिया। क्या वह भूल गया कि उसके नौकरों की टोली उसकी आज्ञा पालन करने को तैयार खड़ी है ? दो नौकर दौड़े भी; किन्तु चकित होकर देखा कि उनका मालिक स्वयं घुटनों के बल बैठा समेट रहा है।

आखिर क्या कारण था ? बात यह थी कि उस जमींदार ने अपने महान् अतिथि के अनबोले इशारे को समझ लिया था। गाँधीजी, जो छत से चले गये थे, इस चमत्कार को न देख सके; परन्तु उन्होंने जो उदाहरण रखा और शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा पर जो कुछ बोले वह अपना काम कर चुका था।

★

गांधीजी और फटी धोती

इस कहानी का संबंध गाँधीजी की एक तामिलनाड-यात्रा से है। बापू का यह कहना है कि पंजाब के बाद यदि कहीं सबसे अधिक भीड़ उनके लिए इकट्ठी होती है तो वह तामिलनाड में ही। तामिलवासी उन्हें बहुत चाहते हैं।

ट्रेन जब विरुधनगर स्टेशन में प्रवेश करने लगी तो वहाँ प्लेटफार्म पर एकत्र अपार जन-समुदाय स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। गाँधीजी रेल-यात्रा में दस-दस या पन्द्रह-पन्द्रह मिनट की झपकियाँ ले लेते हैं। अत्यन्त व्यस्त कार्य-क्रम के बावजूद भी। इस बार भी उनकी तन्द्रा भंग ही हुई थी कि वे उठ खड़े हुए—कमर में लपेटे हुए कपड़े को और कसते हुए।

साथवालों में से एक ने उनकी धोती कहीं फटी देखकर कहा, "आपको अब कपड़ा बदलने का समय मुश्किल से ही है।

हम स्टेशन के क़रीब आ गये हैं। एक मिनटका समय शेष होगा।" "क्यों बदलूँ ?" बापू ने प्रश्न किया—संडास में घुसते-घुसते—और फिर एक क्षण में ही वे बाहर निकल आये। अब उनके वस्त्र में फटा हुआ स्थल दिखाई ही न दे रहा था। बापू ने उसी धोती को उलटकर पहिन लिया था। जब तक उन्होंने घड़ी चश्मा इत्यादि उठाया, ट्रेन प्लेटफार्म पर आ लगी। ट्रेन से उतरते-उतरते उन्होंने उन सज्जन से मुस्कराते हुए कहा कि जब मैं लंदन में विद्याभ्यास के हेतु रहा करता था, तब मुझे केवल सर के बालों की सजावट में दस मिनट लगते। अब तो मुझे अपने संपूर्ण शृंगार में आधा मिनट लगता है। यह कहते हुए वे बाहर निकल पड़े और स्वागत समारोह प्रारम्भ हो गया।

इस दौरे में गांधीजी ने मोटर-यात्रा के समय भी बीच-बीच में झपकियाँ लेने का काम जारी रखा—तेज़ रफ्तार से चलती हुई मोटर पर भी। वे एक "मास्टर ब्यूक" कार में सफ़र कर रहे थे जो एक मोटर-कम्पनी द्वारा उन्हें इस यात्रा के लिए प्रदान की गई थी।

एक ही दिन में उन्होंने अछूतोद्धार पर पाँच-छः सभाओं में भाषण दिये। एक सभा के समाप्त होते ही अगले सभा-स्थल के लिए जैसे ही मोटर रवाना होती, वे डा. राजन से (जो उनके इस दौरे के प्रबंधक थे) पूछते, "क्यों राजन, अगला कार्यक्रम क्या है ? दस मिनट या पन्द्रह मिनट की झपकी ?"

कभी-कभी डा. राजन मुस्कराते हुए उत्तर देते, "नहीं बापू, अगला प्रोग्राम बड़ा अच्छा सा है—पूरे तीस मिनट की झपकी।" "आह कितनी विलासपूर्ण बीतेंगी यह घड़ियाँ," बापू

कह उठते । अगले ही क्षण वे तन्द्रा की गोद में होते और ब्यूक गरजती और मील पर मील चीरती बढ़ती चली जाती ।

जैसे ही सभा का स्थान आता गाँधीजी की निद्रा के चिह्न उनके मुख से अदृश्य हो जाते और वे पुनः मंच पर सीधे पहुँचकर भाषण प्रारम्भ कर देते । कहावत है कि नेपोलियन घोड़े की पीठ पर झपकियाँ ले लिया करता था । हमारे देश की आजादी के अहिंसात्मक युद्ध के नेपोलियन, न केवल तेज रफ्तार से चलती हुई मोटर पर सो सकते थे, बल्कि दो-दो पूर्व निर्धारित आम सभाओं के बीच के थोड़े से समय में भी सो लेते थे ।

मगर हमें यह न भूलना चाहिए कि गाँधीजी की यह अल्प समय की नींद भी बहुत गाढ़ी नींद होती थी ।

*

गाँधीजी और एक धमकी

गाँधीजी अपने दैनिक व्यवहार में अपनी यथार्थवादिता का पूरा परिचय देते हैं । ज्यादातर वे ऐसी धारणाएँ नहीं करते जिन्हें पूरा करने के लिए बहुत समय की ज़रूरत हो । मौलिक धारणाओं के सिवा बाक़ी सब धारणाएँ वे परिस्थिति के अनुसार बनाते हैं । अपने सिद्धान्त भी वे दिनचर्या में हमेशा परखते रहते हैं । और यदि कोई सिद्धांत यथार्थता पर उपयुक्त नहीं

उतरता तो वे उस पर विचार करते हैं और यदि तर्क की दृष्टि से उसे बदलना अनिवार्य हो तो बदलने में भी नहीं हिचकिचाते। उनका विश्वास है कि सिद्धांत और अनुभव एक ही तस्वीर के *दो रुख हैं, और वे हमेशा साथ-साथ* चलते हैं।

आत्महत्या, एक भयानक पाप समझा जाता है और उसे ऐसा समझना उचित भी है। मानव-जीवन एक अनमोल भेंट है और उसे नष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं है, चाहे वह जीवन उसकी अपनी ही सम्पत्ति क्यों न हो ?

किन्तु, गाँधीजी का कथन है कि जीवन में कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जब आत्मघात करना मनुष्य का एक नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है। उनके इस कथन के परिणामस्वरूप आश्रम में एक अप्रिय-सुखान्त घटना घट गई।

एक आश्रम-निवासी को ऐसी अनुभूति हुई कि वह एक बड़ा पापी है। और एक बार इस हृदय-शोध के परिणाम को पाकर उसके आत्म-प्रतारण की मात्रा बढ़ती ही चली गई। उसकी प्रकृति भी कुछ-कुछ उन्माद से अधिकृत थी; पर साधारणतः वह शांत रहा करता था।

यह विचार उस पर बहुत ज़ोर से छा गया कि वह गाँधीजी के आश्रम का एक सदस्य होते हुए भी एक अधम पापी है। सोचते- सोचते वह इस निश्चय पर पहुँचा कि आश्रम तो क्या वह संसार में भी रहने के योग्य नहीं है। उसने आत्महत्या करने का निर्णय कर लिया। यह निर्णय कर चुकने के पश्चात् उसने अपनी स्त्री के नाम, जिससे वह सदा ही झगड़ता रहता था, एक अंतिम पत्र लिखा और उसे लिखकर एक ऐसे स्थान पर

रख दिया जहाँ वह शीघ्र ही उसे पा ले। इतना करने के बाद वह बिस्तर पर सो रहा।

संयोगवश उसकी दुखी स्त्री की दृष्टि उस पर उसी ही रात को पड़ गयी। वह बहुत दिन से यह जानती चली आ रही थी कि उसके पतिदेवता थोड़े बेवकूफ हैं, किन्तु वह अपने इस विचार को जी में समेटे ही रहती थी, एक पतिपरायणा स्त्री की भाँति।

परन्तु इस बार वह डर गयी और पत्र लेकर गाँधीजी के पास दौड़ी आई। गाँधीजी ने तत्काल उस व्यक्ति को बुलवाया। वह आज्ञा मानकर अपना पश्चातापपूर्ण भारी चेहरा लिए आ उपस्थित हुआ। आते ही उसने बापू को अपनी दर्दभरी पाप की कहानी सुनाई और कहा कि उसका यह विश्वास है कि वह अब इस संसार में जीने के सर्वथा अयोग्य है। गाँधीजी जो उस व्यक्ति के स्वभाव और भीरुता से परिचित थे, सारी बात धैर्य के साथ सुनते रहे। सुनने के पश्चात् वे इस बात पर सह-मत हो गये कि उस व्यक्ति ने पाप किया है।

फिर बोले—मगर तुम आत्मघात क्यों करते हो ?

"जियो, सुधार करके अच्छे आदमी बनो, और उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ो।"

वह चिल्ला पड़ा—"नहीं, नहीं। मुझे अपने आपको दंड देना ही चाहिए। मैंने आपको और दूसरों को धोखा दिया है। मेरे लिए कोई आशा नहीं है, मुझे मरना ही चाहिए।"

तब तक एक दो व्यक्ति और भी आ गये और उन्होंने कहा कि गाँधीजी को आत्म-हत्या पर प्रतिबन्ध लगाकर यह सब तमाशा समाप्त करवा देना चाहिए। यह सुनकर वह

पुरुष अपनी आत्म-हत्या-संबंधी आतुरता को और भी प्रकाशित करने लगा ।

बापू सोच में पड़ गए और बोले– "अच्छा अब तुम घर जाओ । एक बार पुनः विचार करो, तुम्हें अपनी जान नहीं देनी चाहिए । सुधार का मार्ग मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत करूँगा । किंतु यदि गंभीर विचार के बाद भी तुम अपना निश्चय बदलने में असमर्थ रहे तो कल फिर आना, हम पुनर्विचार करेंगे ।"

"ओह, मुझे मर जाने दीजिए । रोकिए नहीं । मुझे मरने दीजिए ।" वह फिर कातर स्वर में बोला ।

गाँधीजी उसकी बात काटते हुए बोले–"अब तुम जाओ । तुम मेरे विचार जानते ही हो, तुम अपने लिए मार्ग चुनने के लिए बिल्कुल स्वतन्त्र हो ।"

इसके बाद सब लोग चले गये ।

गाँधीजी उस मूढ़ की विलाप करती हुई पत्नी की ओर मुड़े और उसके आँसू पोंछते हुए बोले, तुम चिन्ता बिल्कुल मत करो, वह आत्महत्या नहीं करेगा । अच्छा हो यदि आश्रम में कहीं अन्यत्र तुम आज रात को सो रहो, जिससे घर पर बात का बतंगड़ बनाने के लिए उसे कोई मौक़ा न रहे ।"

रात बीती । प्रातःकाल वह व्यक्ति फिर गाँधीजी के सामने बुलाया गया ।

हँसी और मुस्कानों के बीच बापू बोल उठे, "तो तुम अभी सलामत हो, अच्छा ही है । आओ बैठो ।"

बाद में अपने पापों को धोने के उद्देश्य से वह व्यक्ति बापू द्वारा निर्देशित प्रायश्चित-संबंधी पाठ पूरा करने लगा ।

आजकल वह काफी अच्छे काम में तल्लीन उन्नति के मार्ग पर चल रहा है।

गाँधीजी का यह विश्वास था कि वह व्यक्ति अत्यंत भीरु होने के कारण आत्महत्या करने में असमर्थ था और उससे अधिक विरोध-प्रदर्शन करना बेकार था। स्पष्ट रूप से यदि प्रतिबन्ध लगाकर उसके निर्णय का तीव्र विरोध कर दिया गया होता, तो बहुत संभव था कि वह उन्माद के नशे में खुदकुशी कर बैठता। गाँधीजी ने थोड़ी-सी जोखिम तो उठाई अवश्य थी, पर वे उस आदमी को समझते थे।

★

गाँधीजी और एक शिक्षक

गाँधीजी एक अच्छे स्कूल-मास्टर हैं, हालांकि इस प्रकार के कार्य के लिए वे समय नहीं निकाल पाते।

साबरमती आश्रम के संरक्षण में एक पाठशाला भी थी। वहाँ, आश्रम के नियमों के अनुसार बेंत इत्यादि का प्रयोग यहाँ तक वर्जित था कि शाला के किसी कमरे में दीवार पर केवल प्रदर्शन के लिए भी बेंत नहीं टाँगी गई। उस पाठशाला को इस बात पर गर्व था कि वह अहिंसा के सिद्धान्तों को पूरी तरह मानते हुए चल रही थी।

किन्तु ऐसी परिस्थितियों में भी प्राय: ऐसे अवसर आ जाते थे, जब कि शिक्षकों को किसी उद्दंड विद्यार्थी की मरम्मत कर देना आवश्यक प्रतीत होने लगता; क्योंकि जैसा सब जानते हैं, लड़के-लड़कियाँ अपनी स्वाभाविक अवस्था-जनित चंचलता से विहीन नहीं हो सकते।

ऐसा शिक्षक तो ढूँढ़ने से भी पाना बड़ा मुश्किल है जो अपने किसी उद्दंड विद्यार्थी की चुनौती भरी शरारत को चुप-चाप सह जाय।

इस प्रकार के उपद्रवों को शांत करने के लिए शिक्षकों ने सारे अहिंसक तरीके आज़मा लिए; किन्तु, परिणाम विशेष संतोषप्रद नहीं हुआ।

मास्टरों ने आखिर तय किया कि सारी वस्तुस्थिति महात्माजी के सामने रख दी जाय।

मसला जरा अजीब-सा था, इसलिए बापू के कमरे में मास्टरों की एक बैठक हुई।

बापू ने जो निर्णय दिया वह यह था :–"यदि किसी विशेष विद्यार्थी के साथ, उसे सुधारने के लिए, शिक्षक सारे अहिंसक तरीकों को अजमाने पर भी असफल रहे, और वह ईमानदारी से उपर्युक्त असफलता का अनुभव अपने अंतर में करें तो, उसे छड़ी का प्रयोग बिना किसी भावुकता के वश में आए अवश्य करना चाहिए।

"अन्यथा, यदि सभी शिक्षक इस बात पर एकमत हों कि बेंत इत्यादि द्वारा दिये गये दंड केवल सामयिक और अल्पकालीन सुधार करने में ही सफल होते हैं—और खराबी को जड़ से मिटाने में असमर्थ हैं तथा फलस्वरूप लाभ से हानि ही अधिक

होती है, तो शिक्षक को छड़ी का आश्रय न लेकर अहिंसापूर्ण तरीक़ों से ही विद्यार्थी को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए और इस प्रयोग में वह सारे प्रयत्नों के बावजूद भी असफल हो जाय तो उसे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए।"

एक मास्टर साहब बोल उठे—"मैंने एक शरारती लड़के को सुधारने के लिए मार-पीट के अलावा और जो भी सारे उपाय हो सकते थे; कर लिये हैं, किन्तु उन प्रयोगों से कुछ भी प्ररिणाम नहीं निकला। मेरा विचार है कि थोड़ी-बहुत मरम्मत कर देने से कुछ लाभ अवश्य होगा।"

बापू ने उक्त शिक्षक को इस प्रयोग के लिए भी आज्ञा दे दी। कतिपय आदर्शवादियों को गाँधीजी की यह बात एक धक्के के समान प्रतीत हुई। अहिंसा का हिंसा के साथ समझौता! अविश्वसनीय-सी बात मालूम होती थी।

परन्तु मास्टर ने अपना कार्य किया उद्दंड विद्यार्थी की बेंत से मरम्मत करके। यह काम सत्याग्रह आश्रम में एक प्रकार की क्रांति के समान ही था।

मास्टर की राय में उस विद्यार्थी-विशेष में कुछ सुधार हुआ। बापू ने कुछ न कहा।

कई सप्ताह बाद उस शिक्षक ने बापू से आकर कहा, "मैंने कई बार बेंत का प्रयोग किया; किन्तु उससे क्षणिक लाभ ही मिला, स्थायी सुधार कतई नहीं हो सका। और अब वह विद्यार्थी पहले से अधिक ढीठ और उद्दंड हो गया।"

किन्तु इस प्रयोग का अन्त यहीं नहीं हो गया। मास्टर साहब वापस लौट गये और पहिले से अधिक विश्वास के साथ उन्होंने अहिंसापूर्ण तरीक़ों से उस बालक को सुधारने की चेष्टाएँ

शुरू कर दी। वे उस पर विशेष ध्यान देने लगे और छड़ी का प्रयोग एकदम बन्द कर दिया।

बालक विद्यार्थी में उनकी चेष्टाओं की प्रतिक्रिया हुई और उसने भी उन्नति करना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ बिगड़े दिल हज़रतों का यह कहना था कि बेंत ही बालक को 'दया' से अधिक लाभ पहुँचाती है !

पर अहिंसा के सबसे बड़े प्रचारक महात्मा गाँधी ही जानते थे कि वास्तव में सही बात कौन सी है।

गांधीजी और 'सुहाग-कमरा'

शांतिनिकेतन का हर व्यक्ति एक उत्सुक आशा से भरा था। विद्यार्थी, अध्यापक, स्त्रियाँ और पुरुष तथा स्वयं महाकवि रवीन्द्रनाथ, सभी के मन में इंतज़ार की बेचैनी थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू को साथ लेकर गाँधीजी तीन दिन के लिए वहाँ आ रहे थे। फ़ौरन ही मेहमान-घर में सब तैयारियाँ हो गईं। यह एक मानी हुई बात थी कि इस मौक़े पर आसपास के गाँवों से झुण्ड के झुण्ड लोग शांतिनिकेतन पर (जो कि स्वयं शांति का घर है।) धावा करेंगे। इसी ख्याल से व्यवस्था क़ायम रखने के लिए विद्यार्थियों का एक स्वयं-सेवक-दल भी



गाँधीजी और गुरुदेव

चित्रकार : श्री. कनु गाँधी

बना दिया गया। गुरुदेव की उस सुन्दर, छोटी-सी कुटिया में स्वागत का आयोजन किया गया था। यह सोचा गया था कि स्वागत के बाद गाँधीजी को एक जुलूस के साथ मेहमान-घर में ले जाया जाएगा। जुलूस में वहाँ के लड़के और लड़कियाँ शांतिनिकेतन के आत्मा-स्पर्शी गान गाते हुए साथ-साथ चलेंगे। मेहमान-घर में बापू के लिए एक अलग कमरा नियत कर दिया गया था। शांतिनिकेतन के प्रसिद्ध 'कला-भवन' के सभी विद्यार्थी और कलाकार, जो महान् शिल्पी नन्दलाल बोस के चरणों में बैठकर कला की शिक्षा पाते थे, उस कमरे को सजाने में जुटे थे। ऐसा मनमोहक सिंगार उस कमरे का उन्होंने किया था कि देखते ही बनता था। बहुत ही मामूली और छोटी-छोटी चीज़ों से उन्होंने काम लिया था; मसलन पत्तों के तोरण-बंदनवार, फूल, चित्र-कारी की हुई मिट्टी की सुराहियाँ, हाथ की छपी खादी वग़ैरह। पर इन सबका सौन्दर्य देखनेवालों को स्तब्ध कर देता था।

और उस दिन सवेरे तड़के ही गाँधीजी आ पहुँचे। बापू के साथ आए थे—जवाहरलाल, महादेव देसाई और खादी-प्रतिष्ठान के सतीश बाबू। कवि की कुटीर पर शांतिनिकेतन की रीति के अनुसार, प्राचीन वैदिक पद्धति से जो स्वागत का समारोह हुआ, वह बड़ा ही भव्य था। गुरुदेव ने स्वयं ही गाँधीजी के भाल पर चन्दन और कुंकुम का टीका लगाया और मेहमान का आलिंगन किया। स्त्रियाँ इस बीच बराबर 'हुलु-ध्वनि' कर रही थीं इस रस्म-अदाई के बाद, कवि स्वयं सबको साथ लेकर मेहमान घर की ओर चले; वहाँ जाकर सब मेहमानों को अपने-अपने नियत कमरों में ठहरा दिया गया। गुरुदेव गाँधीजी को उनके नियत कमरे में ले गये। बापू ने उस कमरे की देहली लांघी'

भीतर की चमचमाती हुई सजावट पर एक नजर डाली और ठहाके पर ठहाका मारते हुए खूब ज़ोर से हँसने लगे।

"यह सब क्या है ?" बेअख्तियार हँसते हुए उन्होंने पूछा— "आखिर मुझे इस सुहाग-कमरे में क्यों लाया गया है ?"

गुरुदेव ने भी उस मजाक में योग दिया। बोले—"आप यह न भूलें कि यह एक कवि का आवास है।"

गाँधीजी हार मानने वाले नहीं थे। बेअख्तियारी से हँसते हुए उन्होंने पूछा—"अच्छा तो फिर वधू कहाँ है ?"

वहाँ स्त्रियाँ भी मौजूद थीं; क्या वे संकोच में न पड़ी होंगी ? —अचरज होता है।

तुरन्त ही कवि ने उत्तर दिया—"हमारे हृदयों की चिर युवती रानी शांतिनिकेतन आपका स्वागत करती है।"

"पर सच मानो, वह इस खोखले मुँह के बूढ़े भिखारी को मुश्किल से ही दूसरी बार आँख उठाकर देखेगी ?"

"नहीं, सो नहीं होगा," गुरुदेव ने समाधान किया—"हमारी रानी ने सदा सत्य को प्यार किया है और इन सारे लम्बे वर्षों के दरमियान अचूक रूप से उसी की पूजा की है।"

बापू ने कहा—"तब तो इस खोखले मुँह के बूढ़े आदमी के लिए भी यहाँ कुछ आशा है ?" ऐसी ही कुछ और भी हँसी-मज़ाक की चुटकियों के बाद गुरुदेव ने अपने मान्य मेहमानों को विश्राम करने के लिए छोड़ दिया।

दूसरे दिन सवेरे तड़के ही कवि एक मित्रभाव की उत्सुकता और चिन्ता से मेहमानों की सुख-सुविधा की देख-रेख के लिए मेहमान-घर में जा पहुँचे। उन्होंने पाया कि सब लोग कब के ही उठकर अपने काम में लग चुके हैं। गाँधीजी और उनके साथी

अपने रोजमर्रा के नियम के अनुसार सवेरे साढ़े चार बजे ही प्रार्थना कर चुके थे। उसके बाद अब सब लोग अपने-अपने कामों में जुट गये थे। लड़के-लड़कियों की एक टोली को सतीश बाबू एक हाथ के पींजन से कपास धुनना सिखा रहे थे। पींजन की आवाज़ गुरुदेव के कानों को संगीत जैसी लग रही थी।

"क्या आप आश्रम की लड़कियों और उनकी सितार को शर्मिन्दा किया चाहते हैं?" गुरुदेव ने सतीश बाबू से पूछा।

दूसरी ओर छुट-भैयों की एक और टोली को भी महादेव देसाई कातना सिखा रहे थे।

कवि बापू के कमरे की ओर गए। वहाँ का दृश्य आँखों के सामने पड़ते ही वे दंग रह गये! वहाँ के सारे सिंगारों को समेट समाटकर एक ओर फेंक दिया गया था। पलँग खींच कर खुली छत पर डाल दिया गया था, क्योंकि गाँधीजी हमेशा खुले आसमान के नीचे ही सोते हैं। सुराहियाँ और पत्तों के तोरण-बंदनवार एक कोने में पटक दिये गए थे ताकि चरखों और फ़ाइलों के ढेर के लिए ठीक-ठीक जगह हो जाए। इस बार गुरुदेव के हँसी उड़ाने की बारी थी।

"हरे राम—हरे राम" बड़ी भयानकता से मज़ाक उड़ाते हुए वे बोले—"भला उस सुहाग कमरे का क्या हुआ? देखता हूँ कि दुलहिन जहाँ की वहाँ है; पर क्या दूल्हा भाग गया है?"

गाँधीजी ज्यों ही गुरुदेव का स्वागत करने के लिए खड़े हुए, वैसे ही वे बेतहाशा हँस पड़े और बोले—"लेकिन मैं तो पहले ही चेतावनी दे चुका था कि दुलहिन बिना दाँत के बूढ़े आदमी को गाँठनेवाली नहीं है!"

मज़ाक़ का यह सिलसिला कुछ ऐसा भव्य और मनोहर था कि देखकर अनायास ही मन में कल्पना उठती थी, मानो देवता लोग स्वयं छुप-छुपकर वह बातचीत सुन रहे हों।

★

गांधीजी और परिवर्तित कार्यक्रम

मदुरा नगर में वह मार्ग जो सुब्बारमण के घर की ओर जाता था, उस साँझ को नर-नारियों से पटा हुआ था। गाँधीजी विरुधनगर से यहाँ आने वाले थे। वह उन दिनों की बात है जब बापू तामिलनाद का अछूतोद्धार-सम्बन्धी दौरा कर रहे थे। उन्हें मदुरा में एक दिन ठहरकर देवकोट्टा जाना था। पहुँचने के ठीक समय पर न आकर गाँधीजी और उनके साथी कई घंटे देर से पहुँचे। मार्ग में उनकी कार बिगड़ गई थी। उनके आते ही गगन-भेदी नारों ने उन्हें परेशानी और थकावट महसूस करने के लिए बाध्य कर दिया। वे एकदम आराम करने के लिए जाना चाहते थे; परन्तु जैसा कि उनका नियम है—सोने के पहले अगले दिन का कार्यक्रम क्या है—यह उन्होंने जानना चाहा। वे उसे देख ही रहे थे कि देवकोट्टा हरिजन संघ के श्री अय्यंगर के आने की घोषणा हुई।

वे गाँधीजी को कार्यक्रम बताने ही आये थे और तत्काल

लौट जाना चाहते थे; अस्तु वे भीतर बापू के पास लाये गए। श्री अय्यंगर ने हरिजन-कोष में स्वयं भी १०००) रु० दिये थे।

गाँधीजी इस बात से प्रसन्न हुए और कहने लगे—"तो तुम्हारे यहाँ तो शायद काफ़ी वज़नदार थैली हरिजन-कोष के लिए तैयार होगी—तुम्हारी खुद की भेंट के अनुकूल ही।"

और फिर, आराम करने के लिए प्रस्तुत होते-होते वे कह उठे, "मैं चाहता था कि यदि मुझे एक दिन आराम करने की छुट्टी और मिल जाती तो और अच्छा होता। इस सफ़र से मैं काफी थक गया हूँ।"

श्री अय्यंगर ने बापू की परेशान-सी थकी हुई मुख मुद्रा की ओर देखा और सहानुभूति-पूर्ण भावना से द्रवित होकर बोले—"आप एक दिन और अवश्य ही आराम करें। देवकोट्टा का कार्यक्रम एक दिन के लिए स्थगित कर दिया जायगा।"

बापू कुछ चकित हुए और कहने लगे—"क्या आप सच-मुच ऐसा कर सकते हैं? क्या इस परिवर्तन से आपके यहाँ का सब आयोजन गड़बड़ न हो जायगा? नहीं मुझे मत छोड़िये। हालांकि यह सच है कि मैं थका हुआ हूँ, पर मदुरा का कार्य-क्रम समाप्त होते ही आपके यहाँ के लिए प्रस्तुत हो जाऊँगा।"

श्री अय्यंगर ने गाँधीजी को आश्वासन दिया कि एक दिन की देर से कोई बड़ी असुविधा न होगी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बापू को आराम करना ही चाहिए।

गाँधीजी ने आभार सहित उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया। अय्यंगरजी देवकोट्टा लौट गये और बापू सो गये।

दूसरे ही दिन प्रातःकाल जिस समय गाँधीजी नाश्ता कर रहे थे, कुछ उत्तेजित आदमी उनके सामने पेश किये गये। वे

देवकोट्टा के निवासी थे और यह बताने के लिए आये थे कि कार्यक्रम में इस परिवर्तन से तमाम लोगों को बहुत-सी अड़चनों और असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा।

बापू बड़े मज़े में उनकी बातें सुनते रहे। फिर बोले—"परन्तु तुम्हारे वे दयावान सभापति कहाँ हैं, जिन्होंने मुझे एक दिन की छुट्टी दे दी थी? क्या तुम लोग उन्हें फाँसी पर चढ़ा आये हो?"

इस आक्रमण से काफ़ी परिहास हुआ। "मैंने स्वयं छुट्टी नहीं माँगी थी," बापू ने कहा—"तुम्हारे सभापति को मैं बहुत थका हुआ नज़र आया और उन्होंने मुझे एक दिन की छुट्टी दे दी। यदि तुम लोगों ने ऐसा सभापति भेजा होता जो इतनी अधिक सौजन्यता और सहृदयता से भरपूर न होकर अधिक दृढ़ निश्चयवाला होता तो यह नौबत ही न आती।"

एक बार फिर ठहाका लगा। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही गाँधीजी ठीक समय पर देवकोट्टा पहुँच गये और वहाँ की सभा में भाषण करते हुए उन्होंने इस घटना का भी उल्लेख किया।

हरिजन-कोष की थैली मिलने पर धन्यवाद देते हुए वे मंच पर से बोले—"आप लोगों द्वारा उदारता-पूर्वक दी गई यह भेंट आपके सभापति के औदार्य के अनुकूल ही है। कहीं इस भेंट में मेरे लिए वह हर्जाना भी तो शामिल नहीं है जो एक दिन की छुट्टी नामंजूर होने के लिए मुझे मिलना चाहिए?"

एकत्रित जन-समुद्र ने अपने अट्टहास से इस प्रश्न का उत्तर दिया।

★

गांधीजी और एक चीनी युवक

सन् १९२५ की बात है, एक नौजवान चीनी विद्यार्थी भारत आया। उसने गाँधी और रवीन्द्र का नाम सुना था। वह स्वयं भी एक होनहार लेखक और कवि था। शांतिनिकेतन में गुरुदेव की विश्व भारती में वह प्रविष्ट हो गया और शीघ्र ही वह सब में घुल-मिल गया। उसी समय जब सारी बातें सफलतापूर्वक चलती जा रही थीं, उसे एक विपत्ति का शिकार होना पड़ा। उस पर जासूस होने का संदेह किया गया। नतीजा यह हुआ कि उसके ऊपर निगरानी की जाने लगी। इससे वह इतना घबरा गया कि उसने विश्वभारती छोड़ने का निश्चय कर लिया। पर एक अजनबी देश में वह कहाँ जाता, किसके पास जाता ?

उसने गाँधीजी को एक पत्र लिखा जिसमें अपना सारा दुख-दर्द और अन्य सारी घटनाएँ साफ़-साफ़ लिख दीं। गाँधीजी उन दिनों कलकत्ते में थे और श्री चितरंजन दास स्मारक कोष के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। चीनी युवक को ठीक समय स्व० महादेव भाई द्वारा लिखित उत्तर मिला। उसमें लिखा था कि वह कलकत्ते आकर गाँधीजी से मिले। और वह शीघ्र ही कलकत्ते पहुँचकर गाँधीजी के सामने जा उपस्थित हुआ।

बापू ने उसकी आँखों में देखते हुए सहानुभूति-पूर्ण स्वर में कहा—"शांतिनिकेतन के लोग मेरे अच्छे मित्र हैं। वे सदा ही अन्य देशों के व्यक्तियों का स्वागत करते हैं। उन्होंने तुम पर सन्देह क्यों किया ? क्या तुम भेदिये हो ?"

चीनी युवक ने प्रभावोत्पादक दृढ़ स्वर में उत्तर दिया— "वे अच्छे लोग हैं; मैं शांतिनिकेतन को चाहता भी हूँ। उन्हें अवश्य ही कोई ग़लतफ़हमी हो गई है मेरे बारे में। परन्तु उनके संदेहों से मेरे हृदय को बड़ा आघात पहुँचा है। मैं जासूस इत्यादि कुछ नहीं हूँ, मैं केवल एक विद्यार्थी हूँ और भारत का अध्ययन करने की जिज्ञासा मेरे मन में है।"

"मैं तुम्हारे कथन को सत्य मानता हूँ" बापू ने कहा। "क्या मैं तुम्हारी जिम्मेदारी लेकर तुम्हें शांतिनिकेतन वापस भेज दूँ ? तुम्हारी व्यक्तिगत सच्चाई के सम्बन्ध में मेरे आश्वासन का वे पूरा सम्मान करेंगे।"

बापू ने उस युवक के भीतर पैठकर उसे समझा था और उसके प्रति कुछ स्नेह भी उन्हें हो गया।

युवक का भी जी भर आया और उसकी आँखों में आँसू झलकने लगे।

"कृपया मुझे अपने ही साथ रहने दीजिए," उसने विनय की। "और मुझे अपने आश्रम में प्रविष्ट करा लीजिये, ताकि मैं आपके समीप रह सकूँ।"

बापू ने मुस्कराते हुए कहा, "परन्तु मेरा आश्रम शांतिनिकेतन से अधिक कठिन स्थान है। अपने अध्ययन के अलावा तुम्हें यहाँ काफ़ी शारीरिक श्रम भी करना होगा।"

उसने उत्तर दिया "चीनी मेहनत का काम करने में अभ्यस्त होते हैं और मुझे तनिक भी भय नहीं है।"

गाँधीजीने स्वीकृति दे दी और चूँकि वे उसके चीनी नाम का ठीक उच्चारण न कर पाते थे, इसलिए उन्होंने उसे दो भारतीय नाम बताकर पूछा कि आश्रम में वह उनमें से किस

नाम द्वारा सम्बोधित किया जाना पसन्द करेगा।

युवक ने "शान्ति" नाम पसन्द किया और वह जबतक भारत में रहा उसका यही नाम प्रचलित था। शान्ति साबरमती आश्रम में प्रविष्ट हो गया। यहाँ भी वह बहुत शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गया। उसका हृदय बिलकुल बालकों जैसा था और स्वभाव का भी विनोदी था। बच्चे उसे बहुत चाहने लगे थे, क्योंकि वह उनके लिए छोटी-छोटी चीजों से भी अनगिनत खिलौने बना दिया करता था।

उसे कपड़ा धोने और रसोई के लिए पानी लाने का काम सौंपा गया था। चर्खा चलाना तो उसने बहुत ही शीघ्र सीख लिया। ज्यों-ज्यों महीने बीतते गये उसमें एक अजीब परिवर्तन सा होने लगा। उसने दिन पर दिन अधिक परिश्रम करना शुरू कर दिया। ऐसा कोई काम न था जो वह न करता। यहाँ तक कि उसने मल-मूत्र साफ करने वाले दल के साथ भी काम किया।

गाँधीजी की रचनाओं का वह बड़ी सावधानी से अध्ययन करता। और तब एक दिन वह लिखने बैठा। पृष्ठ पर पृष्ठ लिखता चला गया और उसके सामने लिखे हुए कागज़ों का ढेर तेज़ी से बढ़ चला। वह क्या लिख रहा था? दिन और रात मेहनत करके कागज़ों पर वह क्या गढ़ रहा था? आखिर उसका लिखना एक दिन समाप्त हुआ। उसने सफाई से उन कागज़ों को तरीक़े से जमाया और नत्थी कर, लिए हुए सीधा बापू के कमरे में जा पहुँचा।

युवक ने गाँधीजी से कहा—"यह है संक्षेप में मेरे जीवन की कहानी। हिन्दुस्तान आने के पहले मैं सिंगापुर में

अन्य सैकड़ों चीनियों के समान घृणित जीवन बिताया करता था।

"मुझे यह प्रेरणा बड़ी तीव्रता से हुई कि मैं अपनी सारी बातें आप के सामने खोलकर रख दूं। कृपया इसे पढ़ लीजिए। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं दस दिन का उपवास करूँ—आत्म-शुद्धि के लिए। उपवास की समाप्ति पर मैं आपको साक्षी बनाकर कुछ प्रण करना चाहता हूँ।"

गाँधीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे समझ गये कि शान्ति एक आध्यात्मिक कशमकश में से गुज़र रहा है। वे बोले—"मैं समय निकालकर तुम्हारी रचना अवश्य पढ़ूंगा। किंतु तुम उपवास उस समय तक मत प्रारंभ करो जब तक मैं इसे पढ़ न लूँ। उपवास एक पवित्र कार्य है और उसे करनेवाले का उसके योग्य होना बहुत आवश्यक है। पहले मुझे यह जान लेने दो कि तुम चाहते क्या हो और तुम्हें किस वस्तु की आवश्यकता है?

गाँधीजी ने समय निकालकर सब पढ़ा। वे उस युवक की स्पष्ट और निष्कपट आत्म-स्वीकृति से प्रभावित हुए। आश्रम जीवन के प्रभाव ने उस युवक को आत्म-निरीक्षण, पश्चात्ताप और आत्म-सुधार करने के लिए थोड़े ही समय में बाध्य कर दिया था।

बापू ने शान्ति को बुलवाया और बड़ी सहानुभूति-पूर्वक उससे बातें कीं। उन्होंने उसे उपवास करने की आज्ञा दे दी। युवक ने दस दिन केवल जल के आधार पर ही बिताये। उपवास चीन वासियों के लिए एक बड़ी कठिन परीक्षा है, क्योंकि स्वभाव से ही चीनी बड़े भोजन प्रेमी होते हैं। पर शान्तिने

साहस पूर्वक अपने उपवास को निबाहा। गाँधीजी प्रतिदिन उसके पास जाते और निकट बैठकर पन्द्रह-बीस मिनट उससे बातें करने में लगाते। वे बातें किस विषय पर होतीं या क्यों होतीं, यह तो कोई नहीं जानता पर शान्ति काफ़ी प्रसन्न होता। बापू ने कदाचित् उसे 'प्रण की पवित्रता' और सच्चरित्रता की महत्ता समझाई होगी। गाँधीजी का यह विश्वास था कि कोई संकल्प या प्रण उस समय तक करना अनुचित है, जबतक अन्तर से अपने आप उसकी प्रेरणा न हो। पश्चात्ताप की तीव्र अनुभूति से प्रेरित होकर ही मनुष्य को पवित्र प्रतिज्ञाएँ करनी चाहिए। क्षणिक भावावेश में आकर लिये गए व्रत बेकार होते हैं।

उपवास के दस दिन बीत जाने पर शांति ने कुछ प्रण किये, परन्तु संकल्प करते समय वह सजग था। उसके नेत्रों के सामने कोई पर्दा न था। प्रतिज्ञाएँ काग़ज़ पर दोहरी लिखी गईं। दोनों प्रतियों पर शान्ति ने हस्ताक्षर किये और गाँधीजी ने साक्षी की। एक प्रति बापू के पास रह गई और दूसरी शांति अपने साथ ले गया। बाद में शांति कहा करता था कि उसे ऐसा अनुभव होता था जैसे उसके कंधों से बड़ा भारी बोझा उतर गया हो।

कुछ दिनों के पश्चात् वह चीन लौट गया। वहाँ जाकर वह एक समाचार पत्र का संपादन करने लगा। संपादक की हैसियत से उसने हमेशा ही अपने हस्ताक्षर 'शांति' ही किये। महात्मा गाँधी के सिद्धांतों को चीन के सम्मुख रखने की उसकी बड़ी आकांक्षा थी।

*

गाँधीजी और 'क्रांतिकारी'

हम कुछ आदमी सेवाग्राम के अतिथि-गृह के बरामदे में बैठे हुए थे। वह जगह हम लोगों द्वारा अकसर घिरी रहा करती थी और दुनिया भर की बातें वहाँ की जातीं। इतने में ही वह आया और हमारे बीच में आकर बैठ गया। उसका आना एक अन्य प्रांत से हुआ था और उस व्यक्ति से प्रसिद्धि भी दूर नहीं थी। बैठते ही उसने कहना शुरू किया—"हमारे प्रांत में गांधीजी देवता की तरह नहीं पूजे जाते।"

यह कहकर उसने एक प्रभावोत्पादक चुप्पी साध ली।

"हम उन्हें सिर्फ एक नेता ही मानते हैं और इस समय उन्होंने जिस पॉलिसी को स्वीकार किया है उससे हम काफ़ी असंतुष्ट हैं।"

वह और भी बहुत-सी बातें करता रहा और उसने बताया कि बापू से कुछ आवश्यक मसलों पर बहस करने के लिए ही वह आया है। हम उससे प्रभावित से दिखने लगे और वह प्रसन्न हो चला।

"हमारे प्रांत में सब क्रांतिकारी हैं," उसकी आवाज़ से चुनौती की ध्वनि आ रही थी। और तब वह बोला—"हम सत्ता पर अधिकार पा लेने के लिए बहुत उतावले हैं।" बात बहुत साफ थी, तात्पर्य यह था कि बापू उसके लिए काफी 'क्राँतिकारी' नहीं थे। और वे स्वराज्य पाने के लिए बहुत ही धीमी रफ्तार से बढ़ रहे थे।

गाँधीजी से भेंट करने के लिए उसे मध्याह्न के बाद का समय दिया गया था। हम लोग आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे

थे। क्रांतिकारी महोदय क़रीब एक घंटे तक बापू के साथ कुटिया में रहे और फिर उनसे शाम को प्रार्थना के अवसर पर हमारी भेंट हुई। किन्तु कितना परिवर्तन हो गया था उस व्यक्ति में, सारा शोर और आत्मप्रशंसा—अहम् प्रतिपादन समाप्त हो चुका था। तब हममें से एक ने पूछा—"कहो भाई, बापू के साथ कैसी निपटी ? क्या तुमने उन्हें बताया कि तुम्हारे प्रांत में लोग कैसे असंतुष्ट हैं ?"

हमें आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति कुछ क्षमा-प्रार्थना की-सी भावना में डूबा हुआ था। कहने लगा—"तुम जानते हो हम लोग कितने मूर्ख हो सकते हैं ?"

बापू की कुटिया में छोटा-सा दिया प्रकाश फैला रहा था और वह छोटा-सा साधु-जीव कुछ फाइलों पर झुका हुआ व्यस्त था। उसी ओर इशारा करते हुए क्रांतिकारी महोदय बोले—"केवल उस कुटी में बैठा हुआ वह ज़रा-सा व्यक्ति ही हमारे देश में सच्चा क्रांतिकारी है। हम केवल बात करने और शोर मचाने में ही अपना समय गुजारते हैं और वह काम करता है। गाँधीजी ने मुझे थोड़ी ही देर में अपने शांत शब्दों द्वारा यथार्थता की धरती पर ला पटका है। हम सब में वे सबसे महान् यथार्थवादी हैं।"

इतना कहकर वह चुप हो गया। उसने हमारी बातें ध्यान से सुनीं। कदाचित् वह सोच में भी निमग्न था—गंभीर चिन्तन में—जो पोषक और विपर्यय का सूचक चिह्न है।